धरती ने दिये हैं बीज
(कविता–सग्रह)

धरती ने दिये है बीज

अशोक चन्द्र

अनिमेष फाउन्डेशन लखनऊ

प्रकाशक
अनिमेष फाउण्डेशन
डी–2/593 सेक्टर एफ
जानकीपुरम्
लखनऊ– 226 021
दूरभाष 0522–2362867

मुद्रक
बी के ऑफसेट दिल्ली – 110 032

आवरण
पेन्टिग विजेन्द्र

पहला सस्करण 2004
मूल्य 80 रूपये

अशोक चन्द्र

DHARTI NE DIYE HAIN BEEJ
(Hindi Poems)
by Ashok Chandra

Published by
Animesh Foundation
D 2/593 Sector – F
Jankipuram
Lacknow –226 021
Tel 0522 2362867

First Edition 2004
Price Rs 80

कभी न लौटने वाली उड़ान पर गए अनिमेष
वापसी की उम्मीद देकर गए अनिल
और
स्मृतियो तथा आस मे जीने वाले
अम्मा–बाऊजी के लिए



अपनी बात

पीछे मुड कर देखता हूँ – सिन्दरी मे इजीनियरिंग की पढाई के दौरान कविता के पहले अकुर फूटते हुए दिखाई पडते हैं । कैम्पस मे कुछ साहित्यिक रूझान वाले दोस्तो के साथ मिलकर की गयी अकुर की गोष्ठियाँ भी याद आती है । फिर कुछ राजनीतिक किस्म के विचारो का प्रभाव उसी तरह के सम्पर्क हलचले और बीच मे साहित्य पत्र–पत्रिकाएँ एव गतिविधियाँ । सब कुछ गडमड – अजब सा घालमेल। यह आठवें दशक के शुरूआती साल थे बहुत बाद मे भान हो पाया ये कितने हगामे भरे और महत्वपूर्ण दिन थे ।

सस्थान मे राष्ट्रभाषा परिषद् के सौजन्य से एक साहित्यिक सास्कृतिक परिवेश निर्मित हो पाया और फिर उसी क्रम म साहित्यिक पत्रिका 'समातर के प्रकाशन की शुरूआत हुई । वहीं से कविताओ और कहानियों के प्रकाशन का सिलसिला भी शुरू हुआ । उस दौर की ओढी हुई गम्भीर भगिमाओ को याद करते हुए आज हँसने का मन होता है ।

अपने आपको एक कवि या लेखक मानने का मुगालता तो नहीं था– हाँ उस दौरान भुख्खड पाठक होन के नात जहाँ कुछ भी साथक मिला ग्रहण करता रहा । लेखक मित्रो की तमाम हिदायतो और आग्रहों के बावजूद दिनचर्या मे नियमित लेखन जैसा कुछ भी शामिल न हो सका । इस बात की तसदीक करता हूँ कि लेखन का अभ्यास आपके लेखक को न केवल विकसित करता है बल्कि एक सहूलियत भी देता है । इस अवगुण का खामियाजा भी खूब भुगता है जितनी लिख पाया उससे कई गुना कविताएँ हाथ से फिसल गयी ।

मेरा यह सदैव मानना रहा है कि कविता मानवीय अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम माध्यम है । किसी सिद्धान्त विचार या अनुभव को कलात्मक एव प्रभावी ढग से सम्प्रेषित करने का उत्कृष्टतम उपकरण है । विज्ञान दर्शन गणित के क्रम मे कविता अतिम पायदान है – भावाभिव्यक्ति की अतिम परिणति। कवि मित्रो के शब्दों मे कहूँ तो कविता विचारधारा से भी आगे जाती है और जीवित रहती है । एक अच्छी कविता के लिए सब कुछ किया जाना चाहिए ।

अपन और अपनी कविताओ को लेकर एक सकोच हमेशा मन म रहा है इसलिए अपने कविकर्म के बारे मे बहुत कुछ कहने की स्थिति नही है । अधिकाशत एक कौध ही कविता म विस्तृत हुई है । कुछ कविताओ ने लम्बा वक्त लिया और काफी मशक्कत करनी पडी लेकिन बहुतो से अभी जूझना है। कोशिश यही रहती रही है कि कविता का पूरा कैनवास दिमाग मे साफ तौर पर धारण कर लिया जाए तभी उसे कागज पर उतारा जाय । हालाँकि इसमे काफी खतरे हैं और इस चक्कर मे बहुत नुकसान हुआ है लेकिन अपनी मानसिक बुनावट मे यह जिद हमेशा सक्रिय रही है ।

कविताएँ लिखी जाने के बाद अकसरहाँ अपना आकर्षण खोती हैं इसलिए ये कभी भी पूरा तोष नहीं दे पाती । यह बात दीगर है कभी उनके पुनर्पाठ से मन में एक वाह भी निकलती है । कुल मिलाकर मन में एक दुविधा हमेशा रही है इसलिए जहाँ तक हो पाया ये तब तक गोपनीय रहीं जब तक किसी मित्र के आग्रह का शिकार नहीं हुईं ।

कवि मित्रों से हमेशा ताकत लेता रहा हूँ । साथियों ने लगातार बल और विश्वास दिया है । यह सग्रह ढेर सारे मित्रों के सम्मिलित दबाव का परिणाम है । कविता सग्रह की पाण्डुलिपि की शक्ल अपनी पहली पैदाइश से दस सालो में कितनी बार बदली होगी कहना मुश्किल है । सभव है सग्रह की कतिपय कविताएँ कमजोर लगें लेकिन चूँकि वही बुनियाद है इसलिए उनका मोह नहीं छोड़ पाया हूँ ।

छह नवम्बर 2003 को दुलारे स्वप्न अप्पू (फ्लाइग आफिसर अनिमेष श्रीवास्तव जिसने वायु सैनिक के रूप मे जोखिम भरी उड़ान को साध लेने की जिद मे हार के बर अक्स अपनी शहादत को तरजीह दी) को खोने के बाद अभी तक अवसन्न स्थिति से उबरा नहीं हूँ । यह तो ऊपरी रखरखाव है जिससे सब कुछ जब्ब कर रखा हे । बहुत कुछ बहादुर बेटे की माँ करुणा के अदम्य साहस का सबल था जिसके भरोसे इन बदहवास दिनों को झेल पाया। इस भयानक वज्रपात की ठड को महसूसते हुए रूह काँपती है । इस अतराल को जैसे जिया है उसे विस्तार से लिखने की तमन्ना है ।

अग्रज कवि विजेन्द्र की कोशिशों से कविता की तरफ फिर से मुखातिब हो पाया । वे लुहार के घन की निर्णायक चोट साबित हुईं । लगा अनिमेष के बहाने अपनी खोई हुई स्मृतियों को फिर से याद किया जाए । बाद मे विजेन्द्र जी के मन्तव्य से भी साहस जगा । कविताओ पर वरिष्ठ आलोचक अनिल सिन्हा ने अपना वस्तुपरक मूल्याकन लिखकर हिम्मत बढाई और नया अध्याय लिखने को प्रेरित किया है । साथी अजय सिह भी निरन्तर लिखने की ताकीद करते हैं और हौसला देते हैं । प्रिय कथाकार स्व0 मोहन थपलियाल के अनेकों सुझाव अभी भी याद आते हैं । वरिष्ठ लेखक/सम्पादक गिरीश चद्र श्रीवास्तव ने शुरूआती दौर मे आत्मविश्वास पैदा किया । बधु कुशावर्ती कविता की पाण्डुलिपियाँ पिछले दस साल से ठीक करते रहे हैं । अनुज कथाकार दीपक ने भी माथा पच्ची की है । सहकर्मी बलवीर ने भी सग्रह को शक्ल देने में हाथ बटाया है । बहुत सारे दोस्तो का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष योगदान है कहाँ तक गिनाऊँ ? सबका शुक्रिया ।

क्रम

धरती ने दिये हैं बीज



एक दिन ऐसा होगा

एक दिन
ऐसा होगा
देह के सारे अनुभव
स्मृतियो की ओर चले जायेगे।
वे वापस नहीं आयेगे
बार-बार पुकारने के बाद भी
वे वापस नहीं आयेगे।

तब
स्पर्श का कोई अर्थ
अनूदित नहीं हो पायेगा
रस खोकर कडुआए
बस शब्द लिखे होगे
एक दिन
ऐसा होगा
देह के सारे अनुभव
स्मृतियो की ओर चले जायेगे।

उस दिन
याद आयेगे पितामह।
अबूझ पहेली जैसे लगेगे
वे और उनकी ललक भरी दृष्टि
कैसे किसके लिये ?
सहेज रखा था उस उम्र मे जीवन
जहाँ देह के सब अनुभव छूट गये होते हैं
बुझ चुकी आँच के साथ
फिर भी क्या रह जाता है शेष
पितामह मे
बार–बार जिन्दा होकर उठने के लिये ।

एक दिन
ऐसा होगा
देह के सारे अनुभव
स्मृतियो की ओर चले जायेगे ।

माँ बनती हुई लडकी

वह वैसी नहीं थी
दूसरी लडकियो की तरह
जो बचपन मे
माँ बनने का अभिनय कर चुकी होती है ।
दूसरी पीढी के दूरभाष पर
राजनीति और साहित्य के बारे मे
बाते करते-करते
थोडा आत्मीय होते हुए
उसने बताया
'इन दिना उसकी तबियत ठीक नहीं है
और आज वह दफ्तर भी नहीं गयी ।
मेरे अटपटे सवाल पर
कि क्या गडबड है ?
हमारे बीच दो मिनट का मौन था
वह तय नहीं कर पा रही थी
कि उसे कितना खुलना चाहिए ।
वह मेरे नौजवान बेटे से
थोडी बडी थी ।

उस वक्त उसका चेहरा मेरे सामने नहीं था
होता तो असलियत
उसकी इस चुप्पी के बाद ही मगज मे आती
कि इन दिनो उसके शुरूआती महीने हैं
वह माँ बनने वाली है ।
अपनी बेवकूफी के बावजूद
मुझे अच्छा लगा उसका अचकचाना
काश ।
हम वीडियो कान्फ्रेंसिग पर होते
और माँ बनती हुई उस लडकी से बतियाते हुए
मैं उसका चेहरा देख पाता ।

बहुत
भागता
जहाँ भी
स्वतत्र
बहुत दौडा
जहाँ भी दिखे
स्वतत्र – विचार ।
बहुत देर बैठा सोचता
कि आयेगे
स्वतत्र – विचार ।
बहुत सारी कल्पनाऍ कीं
कि कैसे होगे
स्वतत्र – विचार ।
बहुत वडी उम्र
गवॉ दी तय करने मे
कि कैसे होने चाहिये
स्वतत्र – विचार ।

आप से पार पाना मुश्किल है ।

महोदय !
आपसे पार पाना मुश्किल है ।
आपके पक्ष मे तैंतीस करोड देवता हैं ।
आपके पत्थर मे ईश्वर वास करता है ।
आप मूर्तियो को दूध पिला सकते हैं ।
सारे धर्मशास्त्र आपकी आवाज में बोलते है ।
आप नाराज हो जाएँ मुझसे
तो आपका भगवान
मुझे मिटटी मे मिला दे ।
वह प्रसन्न हो
तो उसकी विष्ठा भी सोने–चाँदी मे बदल जाये ।
लेकिन आपका खुदा
हत्यारो लुटेरो और अपराधियो का
कुछ भी टेढा नहीं करता
दुनिया की गरीबी अन्याय और शोषण से
उसे कुछ भी नहीं लेना–देना ।

वहाँ वह अपनी ताकत नहीं दिखाता ।
तो आप कहते है
उसे घड़े भरने का इन्तजार है ।
आप खुद जब किसी मुसीबत मे होते है
तो भी वह आपके किसी काम नहीं आता ।
तब आप कहते हैं
परमात्मा आपका इम्तहान ले रहा है ।
आपका अध्यात्म अद्‌भुत है
आपके तर्क अकाट्य है
आप अपनी आस्था और विश्वास पर अटल हैं
मान्यवर !
आपसे पार पाना मुश्किल है ।

बुरे शब्द

कई बार अनायास ही
बुरे शब्द
आहिस्ता प्रवेश करते हैं
बच्चो मे ऐसे
जैसे अनचाहा–गर्भ प्रवेश करता है
स्त्री मे ।
इन्ही अनचाहे–गर्भों पर
टिकी हुई है सृष्टि ।
कौन जाने ? कितनी महान् आत्माएँ
इस कोटि की हो ।
इस कठिन समय मे जब सारे अच्छे शब्द
बुरे लोगो के कब्जे मे चले जा रहे हैं
तो बचे हुये बुरे शब्दो से ही
चल रहे हैं दुनिया के गोरख–धन्धे ।
अप्रत्याशित ही सही
आपराधिक ही सही
बच्चो के बीच घुस आये
बुरे शब्द
धुल पुँछ कर खोल देते हैं पूरी दुनिया ।
हमे शुक्रगुजार होना चाहिये
उन तमाम गोपनीय – शब्दों का
जो बच्चो को बड़ा करते हैं ।

गोरू चराता है बुधना

एक

गोरू चराता है बुधना
सुबह होते ही
रोज
खूँटे दर खूँटे
दौडना पडता ह बुधना को ।
हॉकता है मवेशियो को
एक दरवाजे से दूसरे दरवाजे
आखिरी जानवर खोलते ही
परधान की डयोढी का
पूरी कर लेता है
बुधना अपनी पहली परिक्रमा ।

जानवरो का एक हूजूम
पहुँच जाता हे उसके साथ
भुतहिया बाग
जहॉ पहले से ही तय हे
मिलना
सभी सगी साथियो का ।
यहीं पहली वार
सभी जानवर लेते हैं
लम्बी सॉसे
और अपनी पसन्द के चारे पर
झुकना शुरू कर देते हैं ।
दूसरी तरफ
बुधना के दोस्त अहबाव

डाल लेते हैं गलबहियाँ
मारते हैं बेमतलब किलकारियाँ ।
यों हो जाता है पूरा
रोज का पहला दौर ।

दो

बुधना ने साध रखा है
कठोर नियंत्रण
अपने जानवरों पर ।
मजाल है कोई मवेशी
बुधना की कर जाए
हुक्मउदूली ।

वे सब पहचानते हैं
बुधना के सारे संकेत
उसकी ललकार और टिटकोरियाँ ।
रास्ते पर आ जाते है
जाहिल से जाहिल जानवर
बुधना के संगत मे आते ही ।
वे सभी आज्ञाकारी शिशु हैं
बुधना के ।

तीन

बहुत पहले
बुधना भी जाता था पाठशाला
अपना बस्ता लिए ।
कंठस्थ करता था रोज का पाठ
लेकिन
करना पड गया चुनाव
रोटी और तालीम में

किसी एक का ।
ऐसे ही द्वद्व मे
फॅसा बुधना का बाप
दफनाते हुए अपनी सारी हसरते
बॉध गया बुधना को जानवरो के खूँटो पर ।
तभी से गोरू चराने लगा है
बुधना ।

चार

सॉझ ढलने से पहले
पहुँचाना है बुधना को
मवेशियो को उनके खूँटे ।
उसके बाद ही
धो पाएगा बुधना अपने हाथ–पॉव ।
तभी
उसे नसीब होगी
रात की रोटी ।
यो सच तो यह है
कि हासिल है
बुधना को पेशेवर–महारत ।
देखते हैं कब तक मिलती है
उसे प्रोन्नति ।
फिलहाल तो
गोरू चराता है
बुधना ।

बच्चे चुप हैं !

दिन भर
धमा–चौकड़ी मचाने वाले
बच्चे चुप हैं ।
कभी शान्त न बैठने वाले
बच्चे चुप हैं ।

मैं चाहता हूँ जानना
उनकी लिखाई–पढ़ाई की बाबत ।
मैं चाहता हूँ समझना,
उनके नए खेल
नई शरारतें
जो मुझे ही क्या
सबको गुदगुदाती हैं ।
पर बच्चे चुप हैं ।

मैं चाहता हूँ
उन्हे सर पर बैठाना ।
मै चाहता हूँ
उन्हे बेतहाशा दौडाना ।
लेकिन बच्चे चुप हैं ।

मैं पूछता हूँ
आसान सवाल
दो दूनी ?
और बच्चे चुप हैं ।

मैं सोचता हूँ
वे बोले
मौसम के बारे मे
लेकिन बच्चे चुप हैं

मैं चाहता हूँ
वे जाने जरूर
कम से कम अपने राष्ट्रपति को
अपने प्रधानमत्री के बारे मे
वे कुछ तो बोले ।
पर बच्चे चुप हैं ।

बच्चो की इस खौफनाक—चुप्पी से
मैं घबराया हूँ,
और
बच्चे चुप हैं ।

स्वप्न में मोहनजोदडो

स्वप्न मे
इस उर्वर-प्रदेश से गुजरते हुए
हमेशा मोहनजोदडो की याद आती है ।
कभी गया नहीं मोहनजोदड़ो
कभी देखा नहीं मोहनजोदडो
कभी जाना नहीं मोहनजोदड़ो
कि
लिखा जा रहा है जो मोहनजोदडो
क्या ऐसे ही लिखा जाना है ?
हाँ
सुना भर है मोहनजोदड़ो
और हर बार
इस उर्वर प्रदेश की यात्रा करते हुए
मोहनजोदडो के आतक की अनुगूँज सुनी है ।

समय के बर्बर और क्रूर पंजे
इस खूबसूरत शहर को बना देंगे
पुरातत्व का विषय ।
पुराविद् आएँगे
उत्खनित होगी सभ्यता
लिखा जाएगा
कभी यहाँ विकसित सभ्यता का वास था ।
नाम कुछ भी दिया जाए
मैंने और सबने देखा है
अपनी आँखों से
इस शहर को मोहनजोदड़ो बनते हुए ।
निकाला गया कोयला तेल
और
बहुत सारा खनिज ।
सभ्यता ने इन सबके बल पर
किया उत्तरोतर विकास ।
एक बिन्दु पर आकर
जब सारा रस सूख गया
तो पीना पड़ा उसे अपना ही रक्त ।
एक उर्वर प्रदेश
तब्दील हो गया मोहन जोदडो मे ।

अपराधी है सभ्यता
जिसने धरती का सत्व सोख लिया ।
तब यह शहर
जवान रहा होगा
बच्चे अपनी जातीय–स्मृतियो से बाहर निकल रहे होंगे
सब कुछ हरा–भरा रहा होगा
बजता रहा होगा समूचे–वातावरण मे संगीत

जैसे जीवन मध्धम – मध्धम बजता है ।
औरते इसी शहर मे मुटाई होगी
और बेडौल होकर बूढी हो गयी होगी ।
प्रतिभावान इजीनियर और वैज्ञानिक
जो हाथ नहीं मिला पाए
नेहरू से
खटाल जाने लगे
रोज सुबह नियमित
शुद्ध दूध लाने
कई पीढियॉ एक–दूसरे को
दूध पिलाते–पिलाते
बुढा गयी ।
मुकाम आया होगा
जहाँ शहर की भरी–पूरी जिन्दगी
ठहरने लगी होगी
वहीं से
शहर का भूगोल
इतिहास बनने लगा होगा

ढेर सारी प्रजातियाँ प्रकृति की
पलायित हो गयीं ।
बहुत सारे जीव–जन्तु
जो समझ नहीं पाए कि दिन पूरे हुए
प्रलय के गाल मे समा गए ।
प्रलय कहीं बाहर से नहीं आयी
वह तो हमेशा अन्दर ही अन्दर
मौजूद थी धमनियो मे
जहाँ रक्त दौड़ता था ।

खोदे गए थे जो गड्ढे
निकाला गया था जहाँ से सारा खनिज
वही बच पाए ।
यदि बता सके तो वे ही बताएँगे
आदमी की अन्तरिक्ष यात्रा के विवरण
बड़े-बडे उद्योग अपनी ध्वस्त चिमनियो से बताएँगे
जीवित सभ्यता की ऊँचाइयाँ
जहाँ से ढलान शुरू होती है ।
बता सका तो मैं भी बताऊँगा
कैसे और क्यो स्वप्न मे दिखने लगता है
पूरा प्रदेश
मोहनजोदडो जैसा
जबकि कभी गया नहीं मोहनजोदडो
कभी देखा नहीं मोहनजोदडो ।

इस सदी का अतिम विमर्श

मौजूदा सदी की
आखिरी घडियो मे
किसी राजधानी मे
इकट्ठा होगे
इस सदी के बचे–खुचे सस्कृति–पुरूष
विचारक दार्शनिक और कलाकार ।
वे करेगे
इस सदी का अतिम रचनात्मक–विमर्श ।
सभा मे स्त्रियॉ भी होगी
लेकिन तीस–फीसदी से काफी कम ।
सभागार बौद्धिक आभा से
जगमगा रहा होगा
तपा–तपाया अध्यक्ष मण्डल होगा मच पर ।
मॅजे हुये कवि और लेखक
एक दसक–भरी गम्भीरता के साथ
जमे होगे अपनी कुर्सियो पर ।
वे सबके सब
इस कठिन समय मे
रचना और विचार पर आए सकट पर
गम्भीर बहस के लिए
देश के दूरदराज कोनो से पधारे होगे ।
तेज तर्रार और प्रतिभाशाली

युवा–सचालक बताएगा
कि हमारे सास्कृतिक–मूल्यो और उसकी विरासत पर
आज कौन से खतरे हैं ?
कि किन अर्थों मे
विरल और ऐतिहासिक है
अनेक धाराओ के कलाकारो की यह उपस्थिति ।

इस सदी का
एक लगभग महान् आलोचक
अपने उद्घाटन–वक्तव्य मे
रचना–प्रक्रिया के सबध मे
बेहद बुनियादी लेकिन मामूली सवालो से
अपना भाषण प्रारम्भ करेगा
और व्यग्योक्तियो से भरे सस्मरणो
के साथ समाप्त होगा उसका सम्बोधन
उसके चुप होते ही तैरेगा एक सन्नाटा
पत्रकार–गण
एक झटके के साथ उठकर भागेगे
अपने–अपने अखबार के दफ्तर
ताकि आज के लिए मोटी सुर्खियाँ बनायी जा सके ।

अध्यक्ष मण्डल से उठेगा
एक महतनुमा सम्पादक
और बाल नोचने वाले अदाज मे
अपनी बहुत सारी स्थापनाओ को खारिज करने की
घोषणा करेगा ।
किसी दिवगत साहित्यकार से
जिसे उसकी जिन्दगी मे वह गालियाँ देता रहा
करेगा क्षमा–याचना
और पिटे हुए पहलवान की तरह

एक असतुष्ट और क्षुब्ध
लेकिन घोर–अवसरवादी पत्रकारनुमा–लेखक
अपनी बारी आते ही
लानते भेजेगा
और याद दिलायेगा
कि कैसे सब कटे हुए हैं
बहुसख्य जनता के बुनियादी जीवन सघर्ष से
कि कैसे गैर–जरूरी सवालो स
ठूँसी हुई है हमारी बहसे
कि कैसे जनता के दुख दर्द से कोसो दूर हैं
हमारी खोखली बौद्धिक चिन्ताएँ ।

लगभग अत मे एक सवेदनशील और भावुक कवि उठेगा
और घोषणा करेगा
कि समय आ गया है
कि हम स्थगित कर दे
अपनी विचारधारा और सरोकार
और पता करे कि
हम जिन मूल्यो और आदर्शों के लिए
लडते रहे जीवन भर
उनके प्रति कितने आस्थावान और वफादार रहे ?

बिल्कुल अत मे सभागार मे रखा जायेगा
दो मिनट का मौन
यह मौन होगा सधिस्थल
जाती और आती हुई सदी का ।

ब्लैकहोल

अद्‌भुत होगी हजारो–हजार साल
बाद की दुनिया
जब सौर मण्डल का समूचा विखण्डन
थक कर समा जायेगा
श्लथ हो चुके सूर्य मे ।
ब्रह्माण्ड की दूसरी ताकते
हमारे किसी काम की नही होगी ।
वे हमारे लुप्त हो जाने की
प्रक्रिया को
रोक पायेगी भी तो कैसे ?
ऊर्जा–विहीन इस दुनिया मे
केवल सहति होगी
वेग न होगा ।
और होगी यह विराट पृथ्वी
गूँगे–समय की भाँय – भाँय से
ढकी हुई ।

राख का ढेर हो जायेगा
समूचा बारूद
उसमे कोई आवेश न होगा ।
नदियाँ होगी
पर प्रवाह न होगा
आकाशगगा के बाकी नक्षत्र
टुकुर–टुकुर केवल देखेगे
उनका कोई हस्तक्षेप
न होगा हमारे जीवन–सघर्ष मे ।
पता नही
कई प्रकाश वर्षों दूर
दूसरे तारा मण्डलो को
इसकी खबर हो भी पायेगी

तब तक तो बीत चुकी होगी कई सहस्त्राब्दियाँ ।
मनुष्य की सभ्यता और उसके इतिहास का
कोई ब्यौरा नहीं पहुँचेगा उन तक ।
सारे सम्बन्ध विघटित हो चुके होगे
नष्ट हो जायेगी भाषा
सारी सदिच्छाएँ
बर्फ हो जम जायेगी
समय स्थिर हो जायेगा
बहुत सारे छोटे–छोटे ब्लैकहोल
होगे
हमारे आसपास
क्रियाहीनता की शक्ल मे ।

हजारो हजार साल बाद
हैरत होगी सोचकर
कि कुछ लोग थे
जो लगातार प्रयत्नशील रहे
सोचते बनाते रहे योजनाएँ
मनुष्य को बचाने के लिये
और एक लम्बे समय तक
ढेर सारी अनहोनियाँ और सम्भावित–टकराव से
बचा ले गये इस पृथ्वी को ।
लेकिन
इस बुरे समय मे भी
सचमुच कितना आश्चर्यजनक होगा
किसी बीज का छिटक कर
दूर बिखर जाना
और ले लेना अकुर
जहाँ भी मिल जाये उसे
थोडी सी हवा
थोडा सा पानी ।

मरे हुए कुत्ते

दूर से दिखते हैं वे
किसी अजनबी मुसाफिर का
बीचोबीच सडक पर छूटा हुआ सामान
जसे– कम्बल छोटी–मोटी गठरी या फिर कपडे–लत्ते
काफी करीब आने के बाद
अपनी बची खुची अँतडियो से
फैले हुये जबडो से
सडक पर चिपकी हुई खाल स
या फिर खोपडी के बचे हुये हिस्से से
उन्हे पहचाना जाता है ।
उनके साथ हुआ हादसा
जितना कम ताजा हो

उतनी जल्दी वे जाने जाते हैं
अपनी सडाध और हवा मे दूर तक फैली हुई वदबू से
कि वे मरे हुये कुत्ते हैं ।
सडक पर गुजरती
ट्रको बसो लारियो और टैंकरो का
रास्ता रोकते हैं वे ।
पार करते हुये सडक
अपनी बाजीगरी चपलता और तिलस्मी–लोच के सहारे
अक्सर साफ बच भी जाते हैं ।
चढी दोपहर या रात–बिरात
वे किसी भी वक्त
जिस तेज–रफ्तारी से सडक पार करते हैं
उतनी ही शान से उठी होती है उनकी गर्दन ।
किसी के वश मे नहीं है लगा पाना
उनकी गति या अगले कदम का पूर्वानुमान ।
सारा कुछ जोखिम भरा खेल है उनके लिये ।
पर कभी–कभार जब वे अपने खतरनाक उल्लास
या अनिश्चित–वेग को साध नहीं पाते
और तेज घूमते टायरो की चपेट म आने के बाद
सडक पर सनद की तरह चिपका दिये जाते हैं ।
न सुनाई देने वाली लम्बी कूँ की अपनी अन्तिम हरकत से
इस दुनिया को अलविदा कहते हैं
मरे हुए कुत्ते ।

बारूद पर बैठा हुआ आदमी

बारूद पर
बैठा हुआ आदमी खुश है ।
बारूद पर बैठ कर ।

उसे इलहाम है
चिन्दियाँ उड़ जाएँगी उसकी
खाक हो जाएगा वह
लगते ही चिनगारी बारूद मे ।
लेकिन फिर भी
वह बैठा है बारूद पर

चैन नहीं मिलता उसे
जब तक
लड नहीं लेता जानवरो जैसा ।
मार–काट के बाद ही
हजम हो पाती है पेट की रोटी ।
क्या होता जा रहा है
इस जाति को ?
आत्महता ही होना है इसे ।

तभी तो
बारूद पर बैठा हुआ आदमी
इतना खुश है ।

दे रहा है वह धमकियाँ
दुनिया भर को
आग लगा देगा
अपने घर मे
राख कर देगा यो
इस दुनिया को ।
जलेगा तो जलाएगा भी ।
इसी जिद मे ऐठा है
बारूद पर बैठा हुआ आदमी ।

अटठहास कर रहा है
देख कर कि
लोग डर गए हैं ।
हवाइयॉ उडने लगी हैं
सबके चेहरे पर ।
उसकी एक धमकी से
सन्नाटा छा गया है
और खुश हो गया है
आदमी बारूद पर बैठ कर ।

वक्त आ गया है

मित्र !
क्षमाप्रार्थी हूँ ।
विना पूर्व अनुमति के तुम्हारी
आज कर रहा हूँ अन्त्येष्टि
अपने साझे–वजूद की ।

एक–एक अग
वहुत तकलीफदेह अनुभव के वाद
अलग–अलग कर पाया हूँ,
जिन्हे ढोया था
वेताल की तरह ताजिन्दगी ।

तभी तो
बारूद पर बैठा हुआ आदमी
इतना खुश है ।

दे रहा है वह धमकियाँ
दुनिया भर को
आग लगा देगा
अपने घर मे
राख कर देगा यो
इस दुनिया को ।
जलेगा तो जलाएगा भी ।
इसी जिद मे ऐठा है
बारूद पर बैठा हुआ आदमी ।

अटठहास कर रहा है
देख कर कि
लोग डर गए हैं ।
हवाइयाँ उडने लगी हैं
सबके चेहरे पर ।
उसकी एक धमकी से
सन्नाटा छा गया है
और खुश हो गया है
आदमी बारूद पर बैठ कर ।

वक्त आ गया है

मित्र !
क्षमाप्रार्थी हूँ ।
बिना पूर्व अनुमति के तुम्हारी
आज कर रहा हूँ अन्त्येष्टि
अपने साझे–वजूद की ।

एक–एक अग
बहुत तकलीफदेह अनुभव के बाद
अलग–अलग कर पाया हूँ,
जिन्हे ढोया था
बेताल की तरह ताजिन्दगी ।

अब और नहीं
चल पा रही गाडी
इस गडमड भूगोल मे ।
वक्त आ गया है
स्मृतियो की कपाल क्रिया कर दी जाय ।

अस्थि–शेष प्रवाहित करने पडेगे
यहीं किसी गुमनाम नदी मे । –
माफ करना
इन्हे प्रयाग की गगा मे प्रवाहित करने
का वादा
तोड रहा हूँ ।

मित्र ! विवश हूँ
घोषित करने के लिये
तुम्हारी अकाल मृत्यु ।
क्षमा करना
सब कुछ इकतरफा फैसला है मेरा ।
नहीं था अधिकृत मैं कभी भी इस हेतु ।
फिर भी डके की चोट पर मैंने किया है घोर–अपराध ।
इसीलिये
क्षमाप्रार्थी हूँ ।
वक्त आ गया है ।
स्मृतियो की कपाल क्रिया कर दी जाय ।

गुम हुआ आदमी

तुम्हे गुम हुए
बीते दिनो का गणित
अब उँगलिया के सीमापार पहुँच गया है ।
तारीख मालूम हो सकती है
डायरी की गवाही से ।

तुम्हारे होने न होने की थमी हुई चिन्ताएँ
बीते दिनो की गर्द मे
दब रही हैं ।
मौके–बेमौके की कसक
अभी सालती रहेगी ।
ढेर सारी अटकले अब बहस–तलब नहीं रहीं
हल्के–हल्के प्रश्न
पहले की मजबूती से
अन्दर–बाहर उगते हैं
और जवाबी–आह से बगली काटते हुए
शून्य मे खोए
रह जाते हैं अनुत्तरित ।

तुम्हारे होने से
जिनकी दिनचर्या मे खलल पडता था
समझ मे आती है उनकी बेचैनी ।
शेष है समझना ।
दूर के सरोकारो मे जो खालीपन
तुम छोड गये हो
चाहता तो हूँ हिसाब लगा लूँ
कहॉ–कहॉ
क्या–क्या फर्क पडा है ?
गिन लूँ एक–एक हर्फ ।
पर ऐसा हो नहीं पाता
समझ मे नहीं आता
तसल्ली भर के लिये भी
तुम्हारे न होने का
कौन सा अर्थ लूँ ?

मेरे लिये
तुम तब जहाँ छूटे थे
आज भी वहीं खडे हो ।
मुझे नहीं लगता
इस वक्त भी तुम कही दूर हो ।

अनुपस्थित हैं तो बस वे दस्तके
जो तुम गाहे–बगाहे दे जाते थे ।
यदि कुछ कम है
तो वह ऑच
जो एक चटक–बहस के बाद भी बची रह
जाती है ।
बाकी सब कुछ वैसा का वैसा ही है ।

और लोगो की बाबत
यह बात भले ही न कह पाऊँ
अम्मा–बाबूजी–भाई–बहन
घर–बाहर–छोटे–बडे
कहॉ क्या–क्या दरका है
नाप रहा हूँ
रहूँगा
निर्णय के लिये नहीं
महज देखने–सूँघने के लिए ।

नहीं याद आते विदा के हाथ
जो तुमने भीड–भरी सडक की गर्द के बीचोबीच
हडबडी मे हिलाये थे ।
तब कहाँ मालूम था
ढूढते होगे उनके गुम हुए अक्स
तब कहॉ मालूम था ?
किसे मालूम है
वह मेरा उल्लास
जो हर मुलाकात मे
तुम्हारे चौतरफा बडे होते जाने के अहसास से
मुझे नसीब होता था ।

किसी बहस मे
तुमसे पराजित हो जाने के बाद
कितनी मुश्किलो से
जज्ब कर पाता था अपनी खुशी
किसे मालूम है ?

लोग पूछते हैं

लोग
पूछते हैं
कौन हैं हत्यारे ?

आदमी
जना नहीं गया था इस हेतु ।
मकसद उसका कभी नहीं रहा
हत्या ।
उसे तो सिखाया गया था
जन्मते ही
छुटपन से
अहिंसा परमो धर्म
और 'सर्व धर्म समभाव ।
लिखे थे सुलेख मे उसने
ऐसे ही औदार्य के सूक्ति–वाक्य ।

फिर कब उपजती है
हत्या की हिंस्र लपट ?
विचार ही हत्या करते हैं विचार की
सोखते हें शब्द
और हो जाता है ठूँठ
एक हरा–भरा वृक्ष ।

देखा नहीं जाता उनसे
सरलमना निश्छल–हृदय का स्वप्न
और व्यक्ति हता जाता है ।
इस अपराध की खातिर
फिर चस्पा होते है
दीवारो पर शहादत के प्रमाण–पत्र ।
हत और हत्यारे
दोनो ओढ लेते हैं एक सफेद चादर
बेनामी अर्थों वाले शब्द
नगाडो पर बजने लगते हैं ।
सब कुछ मातमपुर्सी–सा दिखता है ।
आदमी
कब जना गया था इस हेतु ?
लोग पूछते हैं
'कौन थे हत्यारे ?

पत्नियॉ किफायत से चलाती हैं घर

पत्नियॉ
बेहद किफायत से चलाती हैं घर ।
रोजमर्रा की जरूरतो के लिये
निकाल लेती है
पिछले साल डाले गये अचार का
बचा हुआ तेल ।
लेकिन इस पुराने पड गये
गाढे तेल से
वे नहीं छौकती सब्जियॉ
क्योकि
इससे सब कुछ
बेस्वाद होने का खतरा रहता है ।

पत्नियाँ
किफायत से चलाती है घर ।

फिर भी अच्छा नहीं लगता उन्हे ?
पति का ऐसा कुछ करते देख ।
वे चाहती हैं
मियाँ की शहखर्ची
नहीं रास आती उन्हे
किसी मामले मे उसकी कजूसी
हालाँकि
खुद अपने हाथ मे आ गये पैसे को
वे छिपा लेती हैं
किसी सुरक्षित कोने मे
कि काम आएँगे वे सब
उस बुरे वक्त मे
जिसके खौफ मे वे हर वक्त रहती है ।

पत्नियाँ
किफायत से चलाती हैं घर ।

मरी हुई आँख

क्यों ?
मूँद दी जाती हैं आँखें
मरे हुये आदमी की ?
पथराई हुई पुतलियाँ ढक जाती हैं
एक अनिश्चित–सी तसल्ली के लिये ।
क्या ?
अशुभ होता है
दुनिया को देखना
मरी हुई आँख से ?

समीक्षा

संसद में
जूते–चप्पल चलते हैं
तो नागरिक समझता है
संविधान के संशोधन पर
बहस पूरी हो गयी है
और क्रान्ति की सम्भावना
निर्णायक दौर से गुजर रही है
यानि आम आदमी की हालत
सुधर रही है ।

खुद के खिलाफ

जहॉ लोग
एक–दूसरे को
लगी मारते हुए
आगे निकलने की कोशिश मे हो
जहॉ लोग
हजार तिकडमो के साथ
अपने शिकार का इन्तजार कर रहे हो
जहॉ लोग
बिलावजह हर वक्त
काट खाने को तैयार बैठे हो
मेरे भाई ।
अगर तुम
खुद अपने खिलाफ हो जाओगे
तो उनकी साजिशो का
मुकावला कौन करेगा ?

नीद

पहले उसने सबकी
जी हजूरी की
फिर कुर्सी पर बैठ
एक नींद पूरी की ।

रहेंगे हमेशा रहेंगे मेरे बच्चे

रहेगे
हमेशा रहेगे मेरे बच्चे
फुटपाथ पर सोते हुए
कीचड से निकलते हुए
भूख से लडते हुए
रहेगे
हमेशा रहेगे मेरे बच्चे

बार–बार वे निकलेगे
अन्धी–गुफाओ से
रोशनी की चाह मे
रोशनी के साथ

चाहे वे माँज रहे हो प्यालियाँ
परोस रहे हो भोजन
साफ कर रहे हो जूते
बाँट रहे हो अखबार
खीच रहे हो रिक्शा
ढो रहे हो बोझ
जा रहे हो स्कूल
कर रहे हो प्रार्थनाएँ ।
वे जहाँ भी होगे
होगे कर्मरत और अन्वेषी ।
जब तक वे जग रहे होगे
रहेगे हमेशा प्रयत्नशील ।

चैन से बैठेगे नहीं वे
सिवाय उस थोडे से समय के अलावा ।
जबकि
वे नींद मे हो
हालाँकि वे वहाँ भी केवल सोते नहीं हैं
देख रहे होते हैं सपने
सुलझा रहे होते हैं
गुत्थियाँ दुनिया–जहान की सपनो मे ही ।
भले ही इस क्रिया मे
वे थक जाएँ /खप जाएँ
या कि गुम हो जाएँ
लेकिन रहेगे वे हमेशा ही प्रयत्नशील
वे रहेगे युद्धरत हमेशा–हमेशा ।

बदलते हुए

भइया !

सोरती उपमा जोग लिखा
इस शहर की खबर
बस इस इतनी है
कि / पूरब टोले की पठकाइन
मिसेज पाठक हो गयी है
और / चार बच्चों की अम्मा
तिवराइन
अपने मिस्टर के लिए डार्लिंग !
मुन्ना अपने बाप को
गुड मार्निंग सर
दागता है
और मुनिया कलेवा की जगह ब्रेक-फास्ट लेती है ।
अब तुम लिखो कि
घूरे की भैंस ब्यायी कि नहीं ?
सलीम चाचा की मुर्गियाँ कैसी हैं ?
बडकी काकी का सोटा ?
जिन्दा है या .. .. — —
आखिर में माई को परनाम
मुसद्दी भाई को सलाम
तुम्हारा दुलरवा
उर्फ डी मिश्रा ।

तीसरा आदमी

मेरे
सपनो मे अक्सर
आ जाते हैं
बच्चे
कूदते–भागते
सोते–जागते
एक प्यारी–सी
खिलखिलाहट की मानिन्द
और
जब कभी
वक्त मिलने पर
दिन मे
मैं उन्हे ढूँढने
निकलता हूँ
मुहल्ले मे
वे लिबलिबी निगाहो मे
मुझे घूरते हुये मिलते हैं ।

मालूम नहीं क्यो ?
वे मुझे ही पहचानने से इन्कार
कर देते हैं
जबकि मैंने सपनो मे भी
उन्हे उधम मचाने की
खुली छूट दे रखी है ।
मुझे लगता है
मेरे और बच्चो के बीच
कोई तीसरा भी है
जो मेरे सपने चुराकर देख लेता है ।
इसी आदमी ने शायद
यह अफवाह फैला रखी है
कि बच्चो से मेरी पुरानी दुश्मनी है
ताकि मैं
बच्चो से सवाद
स्थापित न कर पाऊँ
ताकि यह
उन्हे बरगला सके ।
फिलहाल
मुझे इसी आदमी की तलाश है ।

लौटते हुए

ओ ! मेरे गँवई–मन
तुम जिनकी तारीफो के
पुल बाँध देते थे
मैं उन्हे जाँचने
पिछले पखवारे तुम्हारे गाँव गया था ।
सोचा था
चैन से गुजरेगे दो दिन
सुकून मे बीतेगी चार राते ।
और कुछ न सही
खाने को पेट भर दुलार
और पीने को ताजी हवा तो
मिल ही जायेगी ।
माफ करना यार
मैं तो लौट आया हूँ,
पर उम्मीदे वहीं छूट गयी हैं ।
वहाँ तो चौपाले सूनी हैं
और पनघट खाली ।
औरते अब घूँघट नहीं निकालतीं ।

शायद शरमाना छोड़ दिया है
लड़कियो ने
न जाने कौन से इशारे सीख लिए हैं ।
लड़के
फिजूल गतिविधियो मे व्यस्त हैं ।
उनकी सपनीली ऑखो का विश्वास
मर गया है ।
पता नहीं कौन–सा डर
घर कर गया है
कजरी फगुवा की मस्ती
मेड – डॉड़ के झगडो मे खो गयी है ।
आदमी
स्वार्थ की आडी–तिरछी रेखाओ मे
बँट गया है
मानो पहचान ही गुम हो गयी हो ।
घर–भीतर महुआ पकता है ।
अदधा चढाते ही
नन्दू
अपनी माँ जशोदा को
गालियॉ बकता है ।
अब तुम्हीं बताओ
यह क्या हो रहा है
वह कौन है
जो आदमी के अन्दर
कॉटे बो रहा है ।

एक और आसमान

लडकियो और चिडियो मे
कोई फर्क नहीं होता है ।

वे जब भी आती है
उनकी चहचहाहट पहले ही
हमे खबर करती है ।

आसमान सिर पर लिये
वे जब भी आती हैं
महसूसने नही देतीं बिल्कुल भी
कितनी–कितनी थकानो के बाद
वे पहुँची हैं इस ठौर
और आते ही
फिर से उठा लेती हैं
कोई
एक और आसमान ।

काँटे

गाँव !
चुभते हैं
शहरी दुल्हन के पाँव ।

सुरग

गॉव के बीच से
गुजरती है रेल ।

बच्चे कुछ कौतूहलवश
और कुछ उत्साह मे
झूमते हैं चीखते हैं
अपनी हालत से लापरवाह ।

रेलो से सफर करते है
वच्चो के पिता और जवान भाई
उन्हीं के कन्धो पर लदे वच्चे
उन्हे ठूँस आते हैं
बोरो की तरह ।
भरी–भरी रेले चली जाती हैं ।

तलाशते हैं
उडती हुई धूल मे
अपनी जानी–पहचानी आकृतियॉ ।

आकृतियॉ जो रोटी हैं
आकृतियॉ जो सपने हैं
आकृतियॉं जो मोटा–मोटी भविष्य है
अर्द्धसुरक्षित ।

सच पूछा जाय तो
रेले ढोती हैं बच्चो के सपने
और इस बीच दूर सुरग मे समा जाती है ।
बच्चे सोचते हैं रेलो के बारे मे
उस सुरग की बाबत
जो लीलती है आदमी को
बच्चे चाहते हैं जानना–समझना
ढेर सारी अनहोनियॉ ।
इसी उधेडबुन मे
वे बडे हो जाते है ।
वे चल देते हैं
कधो पर लादे हुए अपने–अपने बोझ
उसी ओर जहॉ उनके पिता
उनके जवान भाई गुम हुये थे ।

और एक दिन
खुद उसी सुरग मे समा जाते हैं
ठीक अपने पूर्वजो की तरह ।
पर उन्हे सुरग का
कोई खौफ नहीं है ।
बच्चे बडे होने का हौसला नहीं छोडते।

पटकथा

ऐश्वर्य और प्रदर्शन से
डूबी हुई दुनिया के
किसी बहुत बडे मच से
गायक
सुना रहा था गीत ।
वह एक सगीत वीडियो था
वहाँ
एक लोकप्रिय गायक
अपने दिल की अतल गहराइयो मे डूबा हुआ
वेदना और अभूतपूर्व दुख का
एक खूबसूरत कोलाज बनाने मे
मगन था ।
उसे उस वक्त कुछ भी नही दिख रहा होगा ।
वहाँ
लोग इतनी तादाद मे इकटठे थे
कि नहीं मिल सकता था उनका कोई छोर
वे तृप्ति के बाद की उपजी हुई ऊब से
इकटठे हुए थे
उस तेज–सगीत और
अपने पारस्परिक शोर मे लोग
इस कदर हलाकान थो
कि रो–रोकर निहाल हो रहे थे ।
आयोजक और समाजसेवी
कमजोर दिल की
बेसुध हो गयी लडकियो को
दवा–दारू के लिये
अस्पताल पहुँचा रहे थे ।

इस पूरी हलचल के बीचो–बीच
कम्प्यूटर–इजीनियरो का
लाजवाब दृश्य–मिश्रण
कहर ढा रहा था
सगीत–वीडियो मे तमाम स्वर्गीय और
जीवित–चरित्र अपनी आवाजाही मे व्यस्त थे
ओर गायक की गरिमा मे
चार चॉद लगा रहे थे
कि वह लगभग नीम–पागल गायक
अद्वैत–शक्तियो का दूत दीख रहा था
यह इलेक्ट्रॉनिक–इमेजरी का कमाल था
कि खुद गाँधी और मदर टेरेसा
जनता के दुखो मे अपनी भरपूर शिरकत और लम्बी सेवा
शान्ति और अहिसा की ताकत के सदेश के
उम्र भर के प्रचार के बावजूद
उस गायक के सामने बौने दिखाई दे रहे थे ।

सगीत और गायन के मध्य मे उग रहे थे
किसी अफ्रीकी देश के भूखे और नगे बच्चे
जिनके हाथो मे पकडाये गये थे
बहुराष्ट्रीय कम्पनियो द्वारा बनाये बिस्कुट ।
और वे उसे खाने के बजाय
भौचक
सुन रहे थे सगीत ।
उन्हीं की तरह भकुआयी हुई थी इस देश की जनता
जब यह पटकथा
स्क्रीन पर चल रही थी ।

क्या कर रही होगी माँ ?

क्या कर रही होगी
माँ
इस वक्त ?

मुमकिन है
रात का खाना पकाने
बैठी हो
चूल्हे के सामने
और
दाल के साथ–साथ
खुद भी खदबदा रही हो
या फिर
फूँक से ठडी कर रही हो
अपनी उँगलियाँ
जो आग जलाने के क्रम में
अक्सर जलती रहती हैं ।

हो सकता है
पकी हुई सब्जी की महक मे
याद आ गए हो
उसे बीते हुए सोधे क्षण
और मन ही मन फूटने लगी हो
चट–चट
सुलगती लकडी जैसी ।

होने को यह भी हो सकता है
देखने लगी हो
आगामी दिनो का हरापन
और
खिल गयी हो खूबसूरत ऑच सी
या फिर मशगूल हो
किसी उधेड बुन मे
सुलझा रही होगी
स्वेटर की बुनावट ।
जूझ रही होगी
पुराने पडते हुए
धागो की गॉठ से
अन्दाजते हुए दाल का नमक ।

जो भी कुछ
कर रही हो माँ
इस वक्त
कुम्हलाते जाने के बाद भी
उजास से भरी मॉ
जब भी हॅसेगी
बिखेर देगी सूर्यमुखी–आभा .. ।

मैं मारा जाऊँगा

मैं
मारा जाऊँगा चुपचाप ।

किसी भी रात
वे आएँगे
झुड मे
गिरोह बना कर
घेर लेगे मुझे
वार करेगे असलहे
चप चप
मैं
नींद मे बोझिल
आँखे मलता हुआ सोचूँगा
कि सब कुछ है केवल
एक खौफनाक सपना ।
इसीलिए
सुन भी नहीं पाऊँगा
मैं अपनी खुद की चीख
और मारा जाऊँगा चुपचाप ।

पड़ोसी सोते रहेगे
शिराओ मे बहता–बहता रक्त
थक्के बन जाएगा ।

वे चल देगे
मुझे मरा छोडकर
समूह गान करते हुए
वे चल देगे
वे मुडेगे नहीं
उन्हे किसी बात से कोई फर्क नहीं पडता

वे भूल जाएँगे
कि मरने वाला कौन था ?
वे चल देगे
इस जुनूनी–दौर मे
किसी और की खोज करने ।

हो सकता है
वे मुझे दबोच ले
चलती सडक पर
दिन दहाडे ।
आनन–फानन मे मेरी बोटी काट डाले
किसी नौसिखिए कसाई की तरह
तब भी
मैं मारा जाऊँगा चुपचाप ।
मेरी हत्या
अभीष्ट नहीं रही
कभी भी उनके लिए ।
फिर भी
मैं ही मारा जाऊँगा उनके द्वारा
यूँ ही चुपचाप ।

बहुत मुमकिन है
वे
शाम के धुँधलके में
घात लगाए
और झटके में मेरा काम तमाम कर दे ।
मैं बोल भी नहीं पाऊँगा
कि मेरी हत्या सलीके से होनी चाहिए ।
उन्हें इसका कोई तजुर्बा नहीं है
हालाँकि उनमें सभी होंगे
बच्चे बूढ़े जवान ——

वे भाग जाएँगे मुझे छोड़कर
जरा का तरस
कोई भी नहीं होगा
चश्मदीद–गवाह
जब मैं मारा जाऊँगा चुपचाप ।

जब भी फुर्सत में
होगी मेरी शिनाख्त
कोई खबर नहीं होगी अखबार मे सुर्ख ।
ऐसा–वैसा कुछ भी नहीं मिलेगा पुलिस को ।
न कोई षडयंत्र
न उलझेगी कोई गुत्थी
कुछ भी गोपनीय नहीं होगा
और मैं
इस बुरे वक्त में
मारा जाऊँगा चुपचाप ..

वह बहुत मामूली आदमी

वह
बहुत मामूली आदमी
मर गया
तीन महीने कोमा मे रहकर ।
जब तक वह जिन्दा रहा
मरने की प्रक्रिया मे उसके इलाज पर फूँका गया
ढेर सारा पैसा
कगाली के बावजूद ।
पैसा जो ज्यादातर
उधार से बटोरा गया था ।
थोडी–बहुत खैरात को छोडकर
जो दोस्तो और नातेदारो ने
अपनी ओर से दी थी ।

कभी जब नीम–बेहोशी में
बड़ी मुश्किल से खुलती थी
उसकी आँख
उतने से ही उसकी
जवान होती बेटी पुलकित हो जाती थी ।
लिखती थी चिट्ठियाँ सगे सम्बन्धियों को
अब बाबू की तबियत मे
काफी सुधार है ।
ऐसा भी हुआ कि बीमारी के दौरान
उसके ढेर सारे बच्चे
बडी उम्र के लगने लगे ।
उनको आने लगी अक्ल
वो पा गये ढेर सारा धैर्य और साहस
बहुत सी आस्था और सकल्प ।

वह आदमी जब तक जिया
बहुत लापरवाही से जिया
जिन्दगी की ढेरो बुराइयो से वाबस्ता रहा ।
उसने शराब पी
उसने जुआ खेला
उसे चटक–मसालेदार सब्जी अच्छी लगती थी
उसे खाने--पीने दोनो का अच्छा शौक था ।
जिन्दगी के आखिरी दिनो मे
वह लाटरियों का अच्छा खिलाडी था
उसे शायरी अच्छी लगती थी
मरने के
बहुत दिनो बाद मिली उसकी डायरी मे
टूटे–फूटे असआर भी मिले ।
अपनी लाइलाज–बीमारी के दौरान

उसने कई बार
अपने होठ फडकाये
बेचैन ऑखो से
उसने बोलने की कोशिश की ।
हथेलियो की बची हुई नमी से
वह सबको छूने की जिद करता
लेकिन हर बार
लाचारी के आँसू टपकाकर
उसकी ऑखे मूँद जातीं ।
लोगो ने कहा था–
वह अभी और जीना चाहता है
हालॉकि / मरने के थोडे दिनो के
बाद ही उसे विस्मृत किया गया ।

बुद्धि जहाँ भी हो उनकी हो

दुनिया के दादाओ ने
जी भर कर लूटा है दुनिया को ।
पहले उन्होने खनिज को लूटा
फिर श्रम को
और अब वे चाहते हैं
दुनिया मे बुद्धि जहाँ भी हो उनकी हो ।
उनके इशारे पर चले
उनके भोग–विलास
उनकी सुख–सुविधा मे इस्तेमाल हो
उनकी ऐश्वर्य वृद्धि म काम आएँ
उन्होने
बुद्धि को सम्पदा का दरजा दे दिया है
जिससे की जा सके उसकी तिजारत ।

वे बहुत पहले से ही
गरीब–मुल्कों को बनाये हुए हैं गुलाम
राजनीति उनकी है
सस्कृति पर वे हावी हैं
अर्थशास्त्र उनके पक्ष मे है
पर इतने से सतोष नहीं है उनको
वे कोई खतरा नहीं उठाना चाहते
उन्हे डर है अब
बुद्धि से ।
बुद्धि से तर्क पैदा होता है
तर्क से विवेक को बल मिलता है
विवेक आत्मविश्वास देता है
आत्मविश्वास आदमी को
लडने की ताकत मुहैया कराता है ।
उन्हे डर है
कहीं तीसरी दुनिया उनके खिलाफ
लडाई मे एकजुट न हो जाए ।
इसलिये वे कोई खतरा नहीं चाहते ।

हथियार उनके पास हैं
सचार पर उनका कब्जा है
तकनीक से वे हावी हैं
कमजोर हो सकते हैं वे
तो केवल जीवट मे
जिस पर अभी तक गुलाम आदमी की लडाई टिकी है
कमजोर हो रहे हैं वे
अन्दर ही अन्दर
खोखले होकर ।
फिर भी वे बाज नहीं आएँगे

उन्हें खून चाहिये पीने को ।
दुनिया की भुखमरी अकाल से
उनका कोई सरोकार नहीं है ।
उन्हे मतलब है तो केवल
अपने आप से ।
यात्रा के लिये हवाई जहाज
घूमने के लिए लम्बी–लम्बी गाड़ियाँ
रहने के लिये एयरकडीशण्ड घर
उनकी न्यूनतम जरूरते हैं
दास हैं वे अपनी जरूरतो के
एक दिन चातुर्य उनका चुक जायेगा ।
नहीं सह पायेगा चोट
गुलाम आदमी के लड़ाकूपन की
असमर्थ होकर वे हारेंगे
एक दिन वे हारेंगे ।

दु ख

दुर्घटनाएँ अब अपरिचित नहीं लगतीं
जीवन मे
वे वैसे ही उपस्थित हैं
जैसे मौजूद हैं
बाकी सारे कामकाज ।
मशगूल हो
वक्त – वेवक्त की अपनी घुसपैठ से
वे शामिल हो लेती हैं
हमारी दिनचर्या मे
लगभग नियमित–सी बारम्बारता से ।
अब पहले जैसा वक्त नहीं रहा
कि
हम आराम से उनका दुखडा भी रो सके
किसी आपदा या विपत्ति–भरे क्षण मे
रिश्तो की विभिन्न शक्लो के मुताबिक ।
हमारी औरते

दहाड़े मार कर रोएँ–कलपें
या कि
थोड़े दिनों बाद भी
किसी अपने के आगमन पर
स्यापे का वैसा ही दृश्य दुहरा सकें ।

ऐसा क्या है
जब कभी हम दु:खों को चबा–चबाकर
उनका वर्णन करते हैं
तो वे उतने प्रामाणिक नहीं लगते ?
यह भी मुमकिन नहीं है
बहुत सारा वक्त कट जाये
किसी एक दु:ख के सहारे ।
कि अपने दु:ख से
थोड़ा सा भी आनन्दित हो सके ।
सम्भव है तो बस इतना
कि किसी दारुण दु:ख का
कोई उत्सव मना ले
या दु:खों की गरिमा के बखान के लिये
खोजने लगे
भाषा और शिल्प के नये तेवर ।

इस भयावह समय में

यह एक भयावह समय है
वे आये हैं
इस बार
अपना आत्मविश्वास वापस लेकर ।
पहले
जब वे आते थे
बैठ जाते थे ।
विनम्र भाव से
सयत भाषा बोलते हुये
अत्यन्त मानवीय लगते थे
प्रेम और सेवा उनके उपकरण होते ।

लेकिन
इन दिनो
उनकी भाषा मे
हत्यारी आक्रामकता है
अब वे किसी भी सीमा तक हमलावर है ।
वे उस समय भी प्रयत्नशील रहे
जब हमने मान लिया कि
अब उनकी वापसी असम्भव है
उन्होने मेधा और प्रतिभा को
लाठियाँ दे दीं ।

लाठियाँ
जो कभी मनुष्य ने
अपनी सुरक्षा के लिये बनायी थी
कभी भी
लाठियो से शिकार करना
उसका मकसद नहीं रहा ।

आज उन्होने
लाठियो को बन्दूको की शक्ल दे दी है ।
जब हम
सद्भाव के प्रचार–प्रसार में व्यस्त थे
वे सेंध लगा रहे थे धर्मग्रन्थो मे
सीख रहे थे कला
ऋषि–मुनियो और सतो के उपदेशो से
जनता को बहलाने की ।

खारिज करते हुए
हमारी साझी स्मृतियो को
जब वे गुजरते हैं /हमसे होकर
खौफजदा हो जाते हैं लोग ।

अब वे तैयार हैं
कालचक्र का कोई भी फासला लाघने को
इस भयावह समय मे
हमे भरमाने के लिए
विचारो एव प्रतीको का यथेष्ट भण्डार
उनके पास है
उन्होने हमारी मुठभेड की तैयारी
पूरी कर दी है।

बधु की याद

एक जनूनी आदमी
घूमता है
मेरे चारो तरफ
सृष्टि के एक छोर से
दूसरे छोर तक करता है परिक्रमा ।

यही आदमी
पहुँचता है आप तक
झोला लटकाये
बाँचता है आपके खत
लिखता है पते
और छोड जाता है चिट्ठियाँ डाक डब्बे मे ।
वापस आता है
देता है खबर
सारे जहान की
फिर गुम हो जाता है ।

तब हमे ख्याल आता है
कि कुछ कम हो गया हमारा वजन ?
और हम ढूँढना शुरू करते हैं अक्स ।

मेरे वधु !
तुम वही आदमी हो ।
तुम्हारे ही काधे पर टिककर
दुनिया गतिमान है ।
शब्द
तुम्हीं से अपना अर्थ ढूँढकर
हो पाते हैं प्रकाशित
मेरे वधु ! तुम वही आदमी हो ।

सीपियो मे बन्द आदमी का खून

मेरे दोस्त ।
खुदगर्ज इमारत की
सातवीं मजिल के वातानुकूलित–कक्ष मे
बैठे हुये तुम
और गुलदस्तो के बीच
खिलती हुई तुम्हारी मद–मद मुस्कान
डिक्टेशन देते समय
सेक्रेटरी के सुडौल शरीर की गहराई नापती
नर्म–बाहो पर फिसलती
तुम्हारी नापाक नजरे
उस बिन्दु पर भटकती है
जहाँ तुम्हारी उगलियाँ अक्सर अटकती है
गद्देदार कुर्सियो के बीच
पसरा हुआ तुम्हारा अस्तित्व
इस विशिष्ट माहौल मे
सिगरेट के धुएँ की बाबत
घुटन को परिभाषा देने की तुम्हारी कोशिश
अभिजात–यत्रणा सहता हुआ विश्वासघात
उस तबके के प्रति
जिसने तुम्हे इस मजिल तक
अपने कधो पर
लादकर पहुँचाया ।
क्या सिर्फ इसलिये
कि तुम
सडक पर भूख से बिलखते हुये बच्चे को
खूबसूरत गाली देते हुये

अपनी एकदम नयी कार मे सैर करते
गुजर जाओ ?
या बच्चे से अपना शरीर चुराती
पच्चीस साला बुढिया माँ को
इस देश का अभिशाप मानो ?
मैं तुम्हे अच्छी तरह जानता हूँ ।
मानता हूँ,
स्कॉच की बोतल और सिगरेट के धुएँ मे
बैठे हुए तुम
बहसो के दौरान मेज पर
जोरदार मुक्का जडते हो
और रात भर एक नए गम के साथ सडते हो
याद रखो कि
तुम्हारी आयातित घुटन का पर्दाफाश
जल्द ही होने वाला है
उस सत्ता का भी
जो तुम्हे मोती चुगाने के लिये
आदमी का खून सीपियो मे बन्द करती जा रही है
ताकि तुम अधे हो जाओ
इस कदर गन्दे हो जाओ
कि कै करते–करते तुम्हारी अतडियाँ उतर जाएँ
और तुम अनुशासन की दस्त करने लगो ।
लेकिन मेरे दोस्त
अब गाडियाँ लेट होने लगी हैं
और चीटियाँ तुम्हारी खुदगर्ज–इमारत की नींव
तकरीबन चाट चुकी हैं ।

मरीचिका

तुम उन आकृतियो को
जिन्होने तुम्हारे सामने
राई से पर्वत का रूप धरा है
पहचानने से इनकार करते हो ?
अनजान होने का
ढोंग रचते हो ?
क्यो ? आखिर क्यो ?
सत्य है
उन पर नित्य बर्फ की मोटी परत
चढती जा रही है ।
पर तुम यह भूलते हो
उच्च शिखरो पर जमा हुआ हिम
कितनी जल्दी पिघलता है ?
अन्तत तुम्हे तपना है
तपिश से बचाव की
तुम्हारी कई कृत्रिम विधियाँ हैं
पर उनकी यात्रिक–क्षमता की भी एक सीमा है
और फिर तुम्हारा प्रवाह भी तो धीमा है ?
जन्म–जन्मान्तर का यह भ्रम
कब तोडोगे ?
तुम्हे नहीं लग रहा है ?
यह भ्रम तुम्हे कब से ठग रहा है ?
और जब तुम्हारा विश्वास
जग रहा है
उसे याचना की थपकियाँ देकर
यूँ ही न सुला दो ।

क्या तुम्हे याद है
कितनी नदियॉ बही हैं
या बह रही हैं
एक परम्परा लिये
गन्दगी का भण्डार
अपने गर्भ मे छिपाये ।
क्यो ?
क्या समर्पण के लिये नत हैं ?
गिरि–सकुलो को पिघलने तो दो
फिर तुम्हे होगा आश्चर्य
जानकर कि कुछ पहाडो का अस्तित्व
सिर्फ चूहो के समान होता है ।
हाथ पर हाथ न धरो
भोले–चेहरो से मत डरो
इनसे तो सिर्फ खोफनाक चेहरे ही
खौफ खाते हैं
जो अपनी मीठी लार से
कुछ वहम कुछ प्यार से
तुम्हारे जाल को
आराम से कुतर जाते है ।

धन्यवाद ।
तुम्हे पहाड की दहाड
और चूहो की चीत्कार मे
अन्तर दिखा तो
अब तुम कुछ ज्यादा सचेत हो सकते हो
फिर भी एक प्रश्न ।
क्या तुम इतना साहस
बटोर सकते हो ?

पुल

खडे होकर
नदी के एक किनारे पर
देखते हुए नदी का दूसरा किनारा
सोचा
क्या ही अच्छा होता
नदी के दोनो किनारो को
मिलाता एक पुल
जिसमे नदी के खिलाफ होती एक हिम्मत
और जिस पर गुजरता हुआ मैं
नदी के इस किनारे को
दूसरे किनारे छोड आता ।
देखो !
नदी खिलखिला रही है
मेरी इस उधेड़बुन पर
एक मुट्ठी बालू
नदी की नदी मे फेक
मगन होता हूँ ।
सोचता हूँ भविष्य की जिस योजना का
शिलान्यास
मैंने अभी-अभी किया है
उसकी नींव
पुख्ता होनी चाहिए ।

आरोप

वसंत ने
कितनी चालाकी से
पेड़ों की हत्या का आरोप
पतझड़ के सर मढ़ दिया है ।

यह कोई नई बात नहीं है
जंगल में बढ़ते
असंतोष को बौखला कर
वह ऐसी
बेईमानी करता आया है ।

बोध

एक नयी शोध
कुकुरो मे भी
जाग रहा
दायित्व–बोध ।

नकाब

जबकि
मौसम खुशगवार है
और
जुकाम होने का खतरा है
नकाब चढाना
कहाँ तक जरूरी है
मेरे भाई ?
क्या हर्ज है
यदि आदमी
अन्दर और बाहर
यानि चारो तरफ से
नरम हो ?

सावधान

सुनो !
एक ही साथ
इतने मीठे सपने
मत बुनो

प्रतीक्षा

क्यो करे ?
मौसम का इन्तजार
हरसिगार
जिनकी किस्मत मे नहीं है ।
उन्हे अपनी नीम की
टहनी पर फख है
कम-स-कम
सुबह शुरू तो होती है ।

चेतावनी

अरी कोयल !

ज्यादा इतरा मत

तेरी देह के

सारे झूठ

गुजरे बसत की वही मे

साफ–साफ दर्ज हैं ।

फिर

पतझड की हँसी उडाने का

इल्जाम भी

तेरे सर है ।

शोक – प्रस्ताव

माँ ।
बहुत बुरी खबर है

अब तुम्हे जाना है
घर के किसी गुप्त कोटर मे
लदी हुई आँखे लिये
बरसना है जार–जार
ज्यादा वक्त नहीं है
तुम्हारे पास
तुम्हे तुम्हारे अपने बाप के देहान्त से
उपजी औपचारिकता के एवज मे
शोकाकुल दिखना है ।

माँ ।
यह ठिठकने का वक्त नही है ।
पहले रो लो ।
हल्के हो जाने के बाद ही
सोचना–समझना
कि यह सब कैसे हो गया ?

तुम्हे क्या बताना
कि ऐसा तो होना ही था
तो आज के दिन ही सही
करो कोई जतन
कि हम भी शामिल हो ले
तुम्हारे इस शोक मे
और मौन रहे दो पल
उस पुण्यात्मा की शान्ति के लिये ।

क्या फर्क पडता है

क्या फर्क पडता है
कविता कहॉ से शुरू हो रही है ?
हो जाये कहीं से भी शुरू
जिन्दगी की तरह !
क्या फर्क पडता है ?
यात्रा कब से जारी हे ?
कौन बतायेगा ?
किसे मालूम ?
कि
दिन मे सो गये आदमी को
रात की खबर कब लगे ?

धूप जब लगेगी
आदमी चिनचिनायेगा ही ।
धूल जब भी चिपकेगी देह से
खसखसायेगी ।

तो फिर
क्या फर्क पडता है
कि
नहाने के बाद ही
भोजन किया जाय !

रोटी जब भी घुसेगी पेट मे
आग तभी जलनी है ।
इसलिये
कोई फर्क नहीं पडता !
कविता कहीं से भी
शुरू हो सकती है ।

बच्चा क्या सोच रहा है ?

कनाट सर्कस के
इनर–सर्किल से गुजरती
माँ की पीठ पर लदा बच्चा
क्या सोच रहा है ?

बगल में चलते बाप के बारे में
या कि
उस माँ के बारे मे
जिसकी पीठ पर
वह लदा है ।
मुमकिन है
हो गया हो चकाचौंध
वहाँ की अकूत रंगीन–भीड से
या कि
हो बिल्कुल ही बेखबर
और सोच रहा हो
सबसे अलग कोई नई तरकीब ।

इससे उलट माँ
शायद सोच रही है
बच्चे के बारे मे
कि
सुबह की चाय भी तो नहीं दे पायी है उसे ।
रोटी–दाल तो दूर
दूध का तो सवाल ही नहीं उठता ?

धरती ने दिये हैं बीज

माननीय डकल साहब फरमाते हैं
बीज पेटेट हो जाएँ ।
अभी तक
हम रोटी के लिये
हाथ फैलाते हैं
कल बीज के लिये भी हाथ फैलायेगे ।

सदियो की लगन और मेहनत के बाद
आदमी ने उगायी है
अनाज की नस्ले
धरती की प्रयोगशाला मे
आपके वैज्ञानिको ने तो उसे
जबरन हथियाया है ।
असल मे धरती ने दिए हैं बीज ।

वे ! आदमी की उगायी गयी
नस्लो को खारिज करते हैं ।
जीवित रह पायेगी वही नस्ले
जिन्हे उनका आशीर्वाद प्राप्त होगा ।

डार्विन ने नहीं तय किया है
प्रकृति के रहन–सहन को ।
उसने तो महज एक नियम प्रतिपादित किया था
जबकि तमाम श्रेष्ठ–नस्लो के
होने के बावजूद कमतर–नस्ले भी जिन्दा हैं लडती हुई
दिखाती हुई ठेगा
डार्विन साहब की आत्मा को ।

हमारा नादान डाक्टरेट मत्री
ससद मे बयान देता है
कृषि को उद्योग का दरजा देने का ।
उद्योग को पूँजी चाहिये
जो कि खेतिहर मजदूर के पास
आने से रही ।
वे चाहते हैं कृषि के अन्दर
पूँजी का प्रवेश हो
और जनता की रोटी के आदि स्त्रोत को भी
सत्ता के एकाधिकार के अन्दर लाया जा सके ।
यह सब कुछ इसलिये कि
हो अधिक मुनाफा
व्यवस्था केन्द्रित रहे

जेबे भरी रहे उनकी
वे काबिज हो ।
रहे सवार हम पर
उनके चगुल मे रहे जनता की गर्दन

माननीय डकल साहब !
आपको मालूम है ?
आपकी इस नयी वैश्विक–व्यवस्था मे
कौन–से लोग
कौन–सा समाज
जीवित बचा रह पायेगा ?
क्या अब केवल मुनाफा तय करेगा
प्रजातियो की उम्र ?

सनद रहे–

धैर्यक्षम–रचनाकार अशोक चन्द्र

(रचना ही रचनाकार का अपने जरिये परिचय देती है अस्तु)

उत्तर प्रदेश में अवध और पूर्वांचल के सन्धि–क्षेत्रीय गॉव लखरैया (शाहगज) जौनपुर मे 08 अगस्त 1956 को जन्मे अशोक चन्द्र के पहले कविता–सकलन धरती ने दिये हैं बीज की कविताओ मे व्याप्त सवेदना सोच तथा अभिव्यक्ति के आयाम ही कवि का परिचय देते हुए बेहद साफ तौर पर उजागर करते है कि कवि की पृष्ठभूमि ग्रामीण है ।

बतौर व्यक्ति अशोक चन्द्र भले ही आधुनिक शहरी–जिन्दगी के बीच रहते हो पर अपनी रचनात्मकता के स्तर पर अशोक अत्यन्त देशज किसान–सस्कृति से वाबस्ता हैं । अपनी सोच और तार्किकता से वह विज्ञान का विद्यार्थी होने का पता भी देते हैं । अपने आसपास से लेकर अपनी दृष्टि जानकारी व ज्ञान की सीमा मे आती समूची दुनिया को मामूली आदमी की जिन्दगी और जद्दोजहद से लेकर आज के वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास की पराकाष्ठा उस पर कब्जेदारी और उस कब्जेदारी से जुडी सोच के बीच की दूरियो एव असगतियो–विसगतियो आदि की अशोक बखूबी ही नही ताजातरीन और स्पष्ट समझ रखते हैं ।

अशोक चन्द्र की लगभग 30 वर्ष की रचनात्मक क्षमताएँ (और मेरी दृष्टि मे बडी उपलब्धि भी) यहाँ सकलित कविताएँ अगर साल–दर–साल पिछले कोई दस वर्षों से उनके प्रथम काव्य–सकलन के रूप में आने से रह–रह जाती रही है तो समझा जा सकता है कि अशोक कितने रॉयल लापरवाह मगर धैर्यक्षम–रचनाकार है । ऐसे मे काबिल–ए–दाद अशोक के वे मित्र और आत्मीय ही माने जायेगे जो घेर–घार छीन–झपट या दबाव बनाकर अशोक से उनकी कविताएँ ले या जबर्दस्ती झपटकर छापते/छपवाते/या गोष्ठियों में उनसे पढवा लेते रहे हैं ।

अशोक से काव्येतर रचनाएँ लिखवाने मे भी बहुधा ऐसा ही होता रहा है । तब खुद अशोक की कविता की ही एक कविता शीर्षक पक्ति आपसे पार पाना मुश्किल है अशोक के दोस्तों–आत्मीयों के लिए तमगा बनती रही है और अशोक की बिल्कुल अलग तरह की अपनी शैली–शिल्प मे लिखी कई कहानियाँ सस्मरण समिक्षाएँ और टिप्पणियाँ आदि समकालीन पत्रों–पत्रिकाओ मे जगह बना सकी है । और– कितनी आधी–अधूरी तथा अशोक के दिमाग या सोच के स्तर पर कैद से मुक्ति अभिव्यक्ति व प्रकाशन के लिये या कि मुकम्मल होने के लिए अभी कब तक खुद प्रतीक्षारत रहेंगी कहना कठिन है ।

हाँ इस क्रम में इन प्रतीक्षाकुल रचनाओ के उन्मोचन और उन्मुक्ति की कामना अशोक चन्द्र की पहली पुस्तकीय पहल धरती ने दिए हैं बीज से रूबरू होते हुए तो की ही जा सकती है । फिलवक्त बजीए इस सकलन की कविताओं से बेहतर परीचित हुआ जा सकता है हिन्दी के सम्भावनाक्षम कवि अशोक चन्द्र से ।

बन्धु कुशावर्ती